नवम खण्ड

श्रीरामकृष्ण दक्षिणेश्वर में पण्डित शशधर आदि भक्तों के संग में

प्रथम परिच्छेद

(काली ब्रह्म— ब्रह्म और शक्ति अभेद)

श्रीरामकृष्ण भक्तों के संग में अपने उसी पूर्वपरिचित कमरे में धरती पर बैठे हुए हैं। निकट शशधर पण्डित हैं। धरती पर मादुर (बारीक चटाई) बिछी हुई है। उसके ऊपर ठाकुर, पण्डित शशधर एवं कई-एक भक्त बैठे हैं। कुछ भक्त तो ज़मीन के ऊपर ही बैठे हैं। सुरेन्द्र, बाबूराम, मास्टर, हरीश, लाटु, हाजरा, मणिमल्लिक आदि भक्तगण उपस्थित हैं। ठाकुर पण्डित पद्मलोचन की बातें कर रहे हैं। पद्मलोचन वर्धमान के राजा के सभापण्डित थे। समय अपराह्न प्राय: चार।

आज सोमवार, 30 जून, 1884 ईसवी। छ: दिन हुए श्री श्रीरथयात्रा के दिन पण्डित शशधर के साथ ठाकुर का कलकत्ता में मिलन और आलाप हुआ था। आज फिर (दोबारा) पण्डित आए हैं। संग में श्रीयुक्त भूधर चट्टोपाध्याय और उनके ज्येष्ठ सहोदर हैं। कलकत्ता में उनके घर में पण्डित शशधर रह रहे हैं।

पण्डित ज्ञान-मार्ग के पन्थी हैं। ठाकुर उन्हें समझा रहे हैं— 'जिनका नित्य, उनकी ही लीला— जो अखण्ड सच्चिदानन्द, उन्होंने ही लीला के लिए नाना रूप धारण किए हैं।' ईश्वर की बात करते-करते ठाकुर 'बेहोश' हो रहे हैं। भाव में मतवाले होकर बातें कर रहे हैं।

पण्डित से कह रहे हैं— 'बापू! ब्रह्म अटल, अचल, सुमेरुवत्। किन्तु 'अचल' जिसका है, उसका 'चल' भी है'।

ठाकुर प्रेमानन्द में मस्त हो गए हैं। उसी गन्धर्व-विनिन्दित कण्ठ से गाना गाते हैं। गाने पर गाना गा रहे हैं—

के जाने काली केमन, षड़्दर्शने ना पाय दर्शन॥
मूलाधारे सहस्रारे सदा योगी करे मनन।
काली पद्म-बने हंससने हंसीरूपे करे रमण॥
आत्मारामेर आत्मा काली, प्रमाण प्रणवेर मतन।
तिनि घटे घटे विराज करेन इच्छामयीर इच्छा जेमन॥
मायेर उदरे ब्रह्माण्ड-भाण्ड प्रकाण्ड ता जानो केमन।
महाकाल जेनेछेन कालीर मर्म अन्य केवा जाने तेमन॥
प्रसाद भासे लोके हासे सन्तरणे सिन्धु तरण।
आमार मन बुझेछे प्राण बुझे ना, धरबे शशी होये बामन॥

[भावार्थ— कौन जानता है काली कैसी है, षड्दर्शनों ने भी तो उनका दर्शन नहीं पाया है। मूलाधार और सहस्रार में योगी सदा मनन करते हैं। काली पद्मबन में हंस के सहित हंसी रूप में रमण करती हैं। आत्माराम की आत्माकाली, प्रणव के प्रमाण की न्यायीं हैं। इच्छामयी की जैसी इच्छा होती है, वैसे ही वे घट-घट में विराजती हैं। माँ के पेट में प्रकाण्ड ब्रह्माण्ड-बर्तन जानते हो कैसे है! महाकाल ने काली का मर्म जान लिया है। वैसा मर्म अन्य और कौन जान सकता है! प्रसाद तैरता है, जगत उसके सिन्धु पार करके तैरने पर हँसता है। मेरा मन तो समझ गया है किन्तु प्राण नहीं समझे हैं। वह (मन) बौना होकर शशि को पकड़ना चाहता है।]

मा कि एमनि मायेर मेये।
जार नाम जपिये महेश बाँचेन हलाहल खाइये॥
सृष्टि स्थिति प्रलय जार कटाक्षे हेरिये।
से जे अनन्त ब्रह्माण्ड राखे उदरे पुरिये॥
जे चरणे शरण ल'ये देवता बाँचेन दाये।
देवेर देव महादेव जाँर चरणे लुटाये॥

[भावार्थ— माँ क्या ऐसी माँ की बेटी है, जिसका नाम जप कर महेश हलाहल (विष) पीकर भी जीवित रहते हैं, जिसके एक कटाक्ष से सृष्टि-स्थिति-प्रलय होती है, जो अनन्त ब्रह्माण्ड को पेट में भरे रखती है, जिसके चरणों की शरण लेकर देवता अपने दायित्व से बचते हैं, देवों के देव महादेव जिनके चरणों में लेटे हुए हैं।]

गान— मा कि शुधुई शिवेर सती।
जाँरे कालेर काल करे प्रणति॥
न्यांगटाबेशे शत्रु नाशे महाकाल हृदये स्थिति।
बोलो देखि मन सेबा केमन, नाथेर बुके मारे लाथि॥
प्रसाद बोले मायेर लीला, सकलि जेनो डाकाति।
सावधाने मन करो जतन, होबे तोमार शुद्धमति॥

[भावार्थ— माँ क्या केवल शिव की सती हैं? उन्हें तो काल का काल भी प्रणाम करता है? नागा के वेश में शत्रु-नाश करके महाकाल के हृदय में वे स्थित हैं। हे मन, ज़रा बताओ तो वह कैसे हुआ— नाथ की छाती पर वे लात मारती हैं। प्रसाद कहते हैं, माँ की लीला को तो पूरी डकैती ही समझो। हे मन, सावधानी से यत्न करते रहो तो तुम्हारी मति शुद्ध हो जाएगी।]

गान— आमि सुरा पान करि ना, सुधा खाइ जय काली बोले,
मन-माताले माताल करे, मद-माताले माताल बोले।
गुरुदत्त बीज लये प्रवृत्ति ताय मशला दिये,
ज्ञान शुँड़ीते चोयाय माँटी, पान करे मोर मन माताले।
मूल मन्त्र यन्त्र भरा, शोधन करि बोले तारा,
प्रसाद बोले एमन सुरा पेले चतुर्वर्ग मिले।

[भावार्थ— मैं (सुरा) नहीं पीता। 'जय काली' बोलकर अमृत-सुधा पीता हूँ। मन जब मस्त हो जाता है तो मतवाला बना देता है। शराब के नशे में शराबी कहलाता है। गुरु द्वारा दिया गया बीज लेकर प्रवृत्ति का उसमें मसाला लगाकर ज्ञान कलवार द्वारा भट्ठी में चुआकर (टपकाकर) पीने से मेरा मन मतवाला हो रहा है। आज यन्त्र (शरीर) मूलमन्त्र से भरा हुआ है। मैं 'तारा' बोलकर उसको शुद्ध करता हूँ। प्रसाद कहते हैं, ऐसी सुरा पीने पर चतुर्वर्ग (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) मिल जाते हैं।]

गान— श्यामाधन कि सबाइ पाय,
अबोध मन बोझे ना ए कि दाय।
शिवेर इ असाध्य साधन मन मजान रांगा पाय॥

[भावार्थ— श्यामा माँ-रूप-धन क्या सबको मिलता है? यह अबोध मन समझता नहीं कि यह उत्तराधिकार में मिलने वाली सम्पत्ति नहीं। मन माँ के लाल चरणों में लगा होने पर भी शिव के द्वारा भी यह साधन असाध्य है।]

ठाकुर की भावावस्था कुछ कम हुई। उनका गाना थम गया। थोड़ी देर

चुप रहे। जाकर छोटी खाट पर बैठ गए हैं।

पण्डित गाने सुनकर मोहित हो गए हैं। वे अति विनीत भाव से ठाकुर से कहते हैं— ''अब और गाना होगा क्या?''

ठाकुर थोड़ी देर बाद ही फिर और गाना गाते हैं—

श्यामापद आकाशेते मन घुड़िखाना उड़िते छिलो,
कलुषेर कुवातास पेये गोप्ता खेये पोड़े गेलो॥
माया कान्नि होल भारी, आर आमि उठाते नारि।
दारासुत कलेर दड़ि, फाँस लेगे से फेँसे गेलो॥
ज्ञान-मुण्ड गेछे छिँड़े, उठिये दिले अमनि पड़े।
माथा नाइ से आर कि उड़े, संगेर छेजन जयी होलो॥
भक्ति डोरे छिलो बाँधा, खेलते एसे लागलो धाँधा।
नरेशचन्द्रेर हासा काँदा, ना आसा एक छिलो भालो॥

[भावार्थ—श्यामा माँ के चरण रूपी आकाश में मनरूपी पतंग उड़ रही थी। पाप (दोष) की कुबातास (गन्दी हवा) लगने से गोता खाकर गिर गई। माया रूपी कन्नी भारी हो गई। मैं अब उठ नहीं सकता। स्त्री-पुत्र इस यन्त्र की रस्सी हैं, फाँसी लगने से फँस गया हूँ। ज्ञान रूपी सिर फट गया है, उठाते ही झट गिर पड़ता है। मस्तक (बुद्धि) नहीं है तो फिर कैसे उड़े? साथ वाले छः जन (काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य) जीत गए हैं। भक्ति की डोरी से बन्धा हुआ था, खेलने आने पर ही सब गड़बड़ हो गई है। नरेशचन्द्र का हँसना-रोना! न आते तो ही अच्छा था।]

एबार आमि भालो भेवेछि।
भालो भाबीर काछे भाव शिखेछि।
जे देशे रजनी नाइ सेइ देशेर एक लोक पेयेछि।
आमि किवा दिबा किबा सन्ध्या सन्ध्यारे वन्ध्या करेछि।

[भावार्थ— अब की बार मैंने अच्छा सोच लिया है। एक बड़े भले भाव वाले से भाव सीख लिया है। जिस देश में रजनी नहीं है, उस देश का एक जन मैंने पा लिया है। मेरे लिए अब क्या दिन और क्या रात? मैंने सन्ध्या को बाँध लिया है।]

अभय पदे प्राण सँपेछि।
आमि आर कि यमेर भय रेखेछि॥
काली नाम महामन्त्र आत्मशिरशिखाय बँधेछि।
(आमि) देह बेचे भवेर हाटे, श्रीदुर्गानाम किने एनेछि॥

[भावार्थ— मैंने अभय चरणों में प्राण सौंप दिया है। अब क्या मुझे यम का भय है? कालीनाम महामन्त्र अपने सिर की शिखा (चोटी) में बाँध लिया है। (मैं) देह को भव की हाट में बेचकर दुर्गा-नाम खरीद लाया हूँ।]

'दुर्गा-नाम किने एनेछि' यह बात सुनकर पण्डित अश्रुजल-विजर्सन कर रहे हैं। ठाकुर फिर और गाते हैं—

काली नाम कल्पतरु, हृदये रोपण कोरेछि।
एबार शमन एले हृदय खुले देखाबो ताइ बोसे आछि॥
देहेर मध्ये छ'जन कुजन, तादेर घरे दूर कोरेछि।
रामप्रसाद बोले दुर्गा बोले यात्रा कोरे बोसे आछि॥

[भावार्थ— कालीनाम-कल्पतरु मैंने हृदय में रोपण कर लिया है। अब यम के आने पर हृदय खोलकर दिखाऊँगा, इसीलिए बैठा हुआ हूँ। देह के बीच जो छः कुजन (बुरे जन) हैं, उन्हें घर से दूर कर दिया है। रामप्रसाद कहते हैं, दुर्गा-नाम लेकर जीने को तैयार हुआ हूँ।]

आपनाते आपनि थेको मन जेओनाक कारू घरे।
जा चाबि ता बोसे पाबि (ओ रे) खोँजो निजे अन्तःपुरे॥

[भावार्थ— हे मन, तुम अपने में आप रहो। कहीं किसी के घर मत जाओ। जो चाहोगे वही यहाँ बैठे-बैठे ही पा जाओगे, अपने अन्तःपुर में खोजो।]

ठाकुर इस गाने को गाकर कह रहे हैं— मुक्ति की अपेक्षा भक्ति बड़ी है—

आमि मुक्ति दिते कातर नइ,
शुद्धा भक्ति दिते कातर होइ गो।
आमार भक्ति जेबा पाय से जे सेवा पाय,
तारे केबा पाय से जे त्रिलोकजयी॥
शुद्धा भक्ति एक आछे वृन्दाबने,
गोप गोपी भिन्न अन्ये नाहि जाने।
भक्तिर कारणे नन्देर भवने
पिता ज्ञाने नन्देर बाधा माथाय बोई॥

[भावार्थ— मैं मुक्ति देता हुआ कातर नहीं होता, शुद्धा भक्ति देता हुआ कातर (भयभीत) होता हूँ, जी। मेरी भक्ति जो पा लेता है, वह तो सेवा पाता है। उस सेवा को कौन पा

सकता है ? वह तो त्रिलोकजयी हो जाता है। शुद्धा भक्ति बस केवल एक वृन्दावन में है, गोप-गोपियों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। भक्ति के कारण नन्द के भवन में पिता जानकर नन्द का जूता (बाधाएँ, कठिनाइयाँ) सिर पर वहन करता हूँ।]

द्वितीय परिच्छेद

(शास्त्रपाठ और पाण्डित्य मिथ्या, तपस्या चाहिए, विज्ञानी)

पण्डित ने वेद आदि शास्त्र पढ़े हुए हैं और ज्ञान-चर्चा करते हैं। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए उन्हें देख रहे हैं और बातों ही बातों में नाना उपदेश दे रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— वेद आदि अनेक शास्त्र तो हैं, किन्तु साधन बिना किए, तपस्या बिना किए, ईश्वर को नहीं पाया जाता।

''षड् दर्शनों में, आगम-निगम तन्त्रों में दर्शन नहीं मिलता।

''फिर भी शास्त्रों में जो है, उस सबको जानबूझ कर उसी के अनुसार काज करना चाहिए। किसी व्यक्ति ने एक पत्र खो दिया था। याद नहीं कहाँ रख दिया था। तब वह प्रदीप लेकर खोजने लगा। दो-तीन जनों के मिलकर खोजने से वह पत्र मिल गया। उसमें लिखा हुआ था, 'पाँच सेर सन्देश और एक धोती भेज देना।' उतना-सा पढ़ लेने पर उसने फिर चिट्ठी फेंक दी। तब पत्र का प्रयोजन नहीं रहा। अब पाँच सेर सन्देश और एक धोती खरीद कर भेजने से ही काम हो जाएगा।''

(The Art of Teaching—पठन, श्रवण और दर्शन का तारतम्य)

''पढ़ने की अपेक्षा सुनना भला है, सुनने से देखना भला। गुरुमुख अथवा साधुमुख से सुनकर धारणा अधिक होती है— शास्त्र के असार भाग का फिर चिन्तन नहीं करना पड़ता।

''हनुमान ने कहा था, 'भाई, मैं तिथि-नक्षत्र— ये सब नहीं जानता।

मैं केवल राम का चिन्तन करता हूँ।'

''सुनने से देखना और भी भला है। देखने से सब सन्देह चले जाते हैं। शास्त्र में अनेक बातें होती हैं, ईश्वर का साक्षात्कार बिना हुए, उनके चरणों में भक्ति बिना हुए, चित्तशुद्धि बिना हुए— सब ही वृथा है। पञ्जिका (पञ्चाङ्ग) में बीस आड़ा* जल लिखा है। किन्तु पञ्चाङ्ग निचोड़ने पर तो एक बूँद भी (जल) नहीं गिरता! एक बूँद ही निकल जाए, वह भी तो नहीं।''

[विचार कितने दिन— ईश्वर-दर्शन पर्यन्त, विज्ञानी कौन ?]

''शास्त्रादि लेकर विचार कितने दिन? जितने दिन ईश्वर का साक्षात्कार नहीं होता। भ्रमर गुन-गुन कब तक करता है? फूल पर जब तक नहीं बैठता। फूल पर बैठ कर मधु-पान करना आरम्भ करने पर फिर शब्द नहीं।

''फिर भी एक बात है— ईश्वर के दर्शन के पश्चात् भी बातें चल सकती हैं। वे बातें केवल ईश्वर के ही आनन्द की बातें होती हैं, जैसे मतवाले का 'जय काली' बोलना। और भ्रमर फूल पर बैठ कर मधु-पान करने के पश्चात् भी 'आध-आध' स्वर में गुन-गुन करता है।

''ज्ञानी 'नेति-नेति'-विचार करता है। यह विचार करता-करता जहाँ पर आनन्द प्राप्त करता है, वही है ब्रह्म।

''ज्ञानी का स्वभाव कैसा होता है?— ज्ञानी कानून (शास्त्र) के अनुसार चलता है।

''मुझको चानके ले गए थे। वहाँ पर कितने ही साधु देखे। कोई-कोई उनमें से सिलाई कर रहे थे। *(सब का हास्य)*। हमारे जाने पर उन्होंने सब छोड़ दिया। तब फिर पैर पर पैर रखकर बैठकर हमारे संग बातें करने लगे। *(सब का हास्य)*।

''किन्तु ईश्वरीय बातें न पूछने पर ज्ञानी ऐसी बातें नहीं करता। पहले

---

* एक विशेष माप, measure

पूछेगा, अब तुम कैसे हो? घर के सब कैसे हैं?

"किन्तु विज्ञानी का स्वभाव अलग है। उसका एलानो (उदार, खुला, फैला हुआ) स्वभाव है। शायद धोती अलग पड़ी है या बगल के भीतर है— बच्चों की भाँति।

'ईश्वर हैं'— जिसने इस बात को जान लिया है, वह है ज्ञानी। काठ में निश्चित आग है— जो यह जान गया है, वह ज्ञानी है। किन्तु काठ जलाकर पकाना, खूब पेट भर कर आहार (गले तक खाना) जिसका होता है, उसका नाम है विज्ञानी।

"किन्तु विज्ञानी का अष्टपाश* खुल जाता है— काम-कोधादि का आकार मात्र रहता है।"

पण्डित— "भिद्यते हृदयग्रन्थि छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। (हृदय की संदेह की गाँठ खुल जाती है और सभी संशय दूर हो जाते हैं।)

(पूर्वकथा— कृष्णकिशोर के घर पर गमन—
ठाकुर की विज्ञानी की अवस्था)

श्रीरामकृष्ण— हाँ, एक जहाज समुद्र में से जा रहा था। हठात् उसका जितना भी था लोहा-लक्कड़, कीलें, स्क्रू उखड़ने लगे। निकट ही चुम्बक का पहाड़ था। इसीलिए सब लोहा उखड़-उखड़ कर जाने लगा।

"मैं कृष्णकिशोर के घर जाया करता था। एक दिन गया। वह कहने लगा, तुम पान क्यों नहीं खाते? मैंने कहा, 'मेरी खुशी होगी पान खाऊँगा, दर्पण (आरसी) में मुख देखूँगा, हजार लड़कियों के बीच नंगा होकर नाचूँगा।' कृष्णकिशोर की पत्नी उस पर नाराज होकर कहने लगी, 'तुम किसको क्या कहते हो? रामकृष्ण को क्या कह रहे हो?'

"ऐसी अवस्था होने पर काम-क्रोधादि जल जाते हैं। शरीर का कुछ नहीं होता। देखने में अन्य व्यक्तियों की भाँति। किन्तु भीतर फाँक (खोखला,

* अष्टपाश = लज्जा, घृणा, जुगुप्सा, कुल, शील, मान, भय, शंका।

खाली) और निर्मल।''

भक्त— ईश्वर-दर्शन के पश्चात् भी शरीर रहता है?

श्रीरामकृष्ण— किसी-किसी का कुछ काम के लिए रहता है— लोकशिक्षा के लिए। गंगास्नान से पाप चला जाता है और मुक्ति होती है, किन्तु आँख का अन्धापन नहीं जाता। फिर भी पाप के लिए जो कई जन्म कर्म-भोग करने पड़ते हैं, वे कई जन्म फिर नहीं होते। जो ऐंठन दी गई है, उसी घुमाव (ऐंठन) से ही घूमना पड़ेगा। शेष घुमाव और नहीं होगा। काम-क्रोध आदि सब दग्ध हो जाते हैं— तब शरीर बस कुछ काम के लिए ही रहता है।

पण्डित— उसको ही संस्कार कहते हैं।

श्रीरामकृष्ण— विज्ञानी सर्वदा ईश्वर-दर्शन करता है। जभी तो ऐसा एलानो (खुला, उदार, relaxing) भाव होता है। खुली आँखों से भी दर्शन करता है। कभी नित्य से लीला में रहता है, कभी लीला से नित्य में जाता है।

पण्डित— इस बात को नहीं समझा।

श्रीरामकृष्ण— नेति-नेति विचार करके उसी नित्य अखण्ड सच्चिदानन्द में पहुँचता है। वे यही विचार करते हैं— 'वे जीव नहीं, जगत नहीं, चौबीस तत्त्व नहीं'। नित्य में पहुँचकर फिर देखता है, 'वे ही सब होकर रह रहे हैं— जीव, जगत, चौबीस तत्त्व'।

''दूध को जमाकर, मथकर मक्खन निकालना चाहिए। किन्तु मक्खन निकल जाने के पश्चात् देखता है कि छाछ का ही मक्खन है, मक्खन की ही छाछ है। खोल का ही केन्द्र (माझ, बीच, centre), केन्द्र का ही खोल है।''

पण्डित—*(भूधर के प्रति, सहास्य)*— समझे? यह समझना है बड़ा ही कठिन!

श्रीरामकृष्ण— मक्खन हुआ तो छाछ भी हुई है। मक्खन का विचार करने के साथ-साथ छाछ का भी विचार आता है, क्योंकि छाछ न हो तो मक्खन नहीं होता। तभी नित्य को मानने से लीला को भी मानना पड़ता है। अनुलोम और विलोम। साकार-निराकार-साक्षात्कार के पश्चात् यह अवस्था होती है! साकार— चिन्मय रूप; निराकार— अखण्ड सच्चिदानन्द।

''वे ही समस्त हुए हैं। तभी विज्ञानी के लिए 'यह संसार मजे की कुटी'। ज्ञानी के पक्ष में 'यह संसार धोखे की टट्टी'। रामप्रसाद ने 'धोखे की टट्टी' कहा था। तभी किसी ने जवाब दिया था—

एइ संसार मजार कुटि, आमि खाइ दाइ आर मजा लुटि।
ओ रे बद्यि नाहिक बुद्धि, बुझिस केवल मोटा मुटि॥
जनक राजा महातेजा तार किसेर छिलो त्रुटि।
से एदिक-ओदिक दुदिक रेखे खेयेछिलो दूधरे वाटि॥

(सबका हास्य)

[भावार्थ— यह संसार मजे की कुटिया है। मैं खाता-पीता और मौज करता हूँ। अरे बुद्धिमान, बुद्धि तो मेरी नहीं है किन्तु मैं सार समझ गया हूँ। राजा जनक बड़े तेजस्वी थे। उन्हें क्या कमी थी? वे इधर-उधर दोनों ओर रखते थे और दूध का कटोरा पीते थे।]

''विज्ञानी ने ईश्वर का आनन्द विशेषरूप से सम्भोग किया है। किसी ने दूध सुना है, किसी ने देखा है, किसी ने पिया है। विज्ञानी ने दूध पिया है और पीकर आनन्द-लाभ किया है और हृष्टपुष्ट हुआ है।''

ठाकुर तनिक चुप हो गए और पण्डित को तम्बाकू पीने के लिए कहा। पण्डित दक्षिण-पूर्व के लम्बे बरामदे में तम्बाकू पीने के लिए गए।

तृतीय परिच्छेद

(ज्ञान और विज्ञान— ठाकुर और वेदोक्त ऋषिगण)

पण्डित फिर लौटकर भक्तों के संग फर्श पर बैठ गए। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे हुए फिर बातें कर रहे हैं।

श्री रामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— तुम से यही कहता हूँ। आनन्द तीन प्रकार का है— विषयानन्द, भजनानन्द और ब्रह्मानन्द। जिसे सर्वदा ही लिए रहते हैं—कामिनी-काञ्चन का आनन्द, उसका नाम है विषयानन्द। ईश्वर का नाम-गुणगान करके जो आनन्द है, उसका नाम है भजनानन्द। और भगवान-दर्शन का जो आनन्द है, उसका नाम है ब्रह्मानन्द। ब्रह्मानन्द-लाभ के बाद

ऋषिगण स्वेच्छाचारी (free willed) हो जाया करते थे।

"चैतन्यदेव की तीन प्रकार की अवस्थाएँ होती थीं— अन्तर्दशा, अर्धबाह्यदशा और बाह्यदशा। अन्तर्दशा में भगवान-दर्शन करके समाधिस्थ हो जाते, जड़समाधि की अवस्था हो जाती। अर्धबाह्य में थोड़ा-सा बाहर का होश रहता। बाह्यदशा में नाम-गुण-कीर्त्तन कर सकते थे।"

हाजरा *(पण्डित के प्रति)*— अब तो सब सन्देह नष्ट हो गए!

श्रीरामकृष्ण *(पण्डित के प्रति)*— समाधि किसे कहते हैं? जहाँ पर मन का लय हो जाता है। ज्ञानी की जड़समाधि होती है— 'मैं' नहीं रहता। भक्तियोग की समाधि को चेतनसमाधि कहते हैं। इसमें सेव्य-सेवक का 'मैं' रहता है— रस-रसिक का 'मैं' रहता है— रस-रसिक का 'मैं'—आस्वाद्य-आस्वादक का 'मैं'। ईश्वर सेव्य, भक्त सेवक; ईश्वर रसस्वरूप, भक्त रसिक; ईश्वर आस्वाद्य, भक्त आस्वादक। चीनी नहीं होऊँगा, चीनी खाना पसन्द करता हूँ।

पण्डित— वे यदि समस्त 'मैं' लय कर लें तो फिर क्या होगा? चीनी यदि बना लें?

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— अपने मन की बात खोलकर बताओ। 'माँ कौशल्या, एक बार स्पष्ट करके बताओ!' *(सबका हास्य)*। तो फिर क्या नारद, सनक, सनातन, सनत, सनत्कुमार शास्त्र में नहीं हैं?

पण्डित— जी हाँ, शास्त्र में हैं।

श्रीरामकृष्ण— उन्होंने ज्ञानी होकर भी 'भक्त का मैं' रख लिया था। तुमने भागवत नहीं पढ़ा?

पण्डित— काफी सारा पढ़ा है, सम्पूर्ण नहीं।

श्रीरामकृष्ण— प्रार्थना करो। वे दयामय हैं। वे क्या भक्त की बात नहीं सुनते? वे कल्पतरु हैं। उनके पास जाकर व्यक्ति जो माँगेगा, वही मिलेगा।

पण्डित— मैंने इन सब पर इतना चिन्तन नहीं किया है। अब सब समझ रहा हूँ।

श्रीरामकृष्ण— ब्रह्मज्ञान के पश्चात् भी ईश्वर ज़रा-सा 'मैं' रख देते हैं। वही 'मैं'— 'भक्त का मैं', 'विद्या का मैं'। उसके द्वारा यह अनन्त लीला आस्वादन

होती है। सारा मूसल घिसने पर ज़रा-सा रहा था, और फिर उस के ही बेंत-वन में गिर जाने से कुलनाश हुआ— यदुवंश-ध्वंस हो गया। विज्ञानी जभी तो इस 'भक्त का मैं', 'विद्या का मैं' को रखे रहते हैं— आस्वादन के लिए, लोकशिक्षा के लिए।

[ऋषिगण भय व त्रास में— A new light on the Vedanta]

''ऋषिगण भयभीत। उनका भाव क्या है, जानते हो? मैं जैसे-तैसे किए जा रहा हूँ, फिर कौन आता है? 'खादि काठ' (हल्की, खोखली लकड़ी) अपने-आप तो जैसे-तैसे करके तैर जाती है, किन्तु उस पर एक पक्षी के बैठ जाने से वह डूब जाती है। नारदादि 'बहादुरी काठ' (भारी, मजबूत लकड़ी) अपने-आप भी तैर जाती है, और फिर अनेक जीव-जन्तुओं को भी ले जा सकती है। स्टीमबोट (steamer)— अपने-आप भी पार जाता है तथा औरों को भी पार करवा देता है।

''नारदादि आचार्य विज्ञानी, अन्य ऋषियों से साहसी। जैसे पक्का खिलाड़ी 'छकबाँधा खेल' खेल सकता है। क्या माँगते हो, छः कि पाँच? हर बार ही पड़ता है ठीक—ऐसा खिलाड़ी! और फिर वह बीच-बीच में मूछों पर ताव देता है।

''जो ज्ञानी हैं, वे भयभीत होते हैं। जैसे शतरंज खेलते हुए कच्चा व्यक्ति सोचता है, 'जिस किसी तरह एक बार गोटी निकले सही'। विज्ञानी को किसी से भी भय नहीं होता। उसने साकार-निराकार-साक्षात्कार किया हुआ है, ईश्वर के संग आलाप किया हुआ है, ईश्वर का आनन्द-सम्भोग किया हुआ है।

''उनका चिन्तन करके अखण्ड में है— मन लय होने पर ही आनन्द। और फिर मन के लय बिना हुए भी लीला में मन रखने पर भी आनन्द।

''खाली ज्ञानी— एकरसा (अरुचिकर, monotonous) होता है, केवल विचार करता है, 'यह नहीं-यह नहीं, यह सब स्वप्नवत् है'। मैंने दोनों

हाथ छोड़ दिए हैं, जभी सब लेता हूँ।

''कोई अपनी समधन से मिलने गई थी। समधन तब धागा तैयार कर रही थी, नाना प्रकार का रेशम का धागा। समधन को अपनी समधन देख बड़ा आनन्द हुआ। वह बोली, 'बहिन, तुम्हारे आने से मुझे जो बड़ा आनन्द हो रहा है, वह बता नहीं सकती। जाऊँ, तुम्हारे लिए जलपान लाऊँ जाकर।' वह जलपान लेने गई। इधर नाना रंगों के रेशम के धागे देखकर उस समधन को लोभ आ गया। उसने एक गुच्छा रेशम का अपनी बगल में लुका (दिया) लिया। समधन जलपान ले आई और बड़े उत्साह से उसे जलपान करवाने लगी। किन्तु धागों को देखकर वह समझ गई कि एक बण्डल धागे का समधन ने खिसका लिया है। तब उसने धागा निकलवाने के लिए एक उपाय सोचा।

''उसने कहा, बहिन! बहुत दिनों पश्चात् तुम्हारे साथ मिलन हुआ है। आज बड़े भारी आनन्द का दिन है। मेरी बड़ी इच्छा हो रही है कि हम दोनों नृत्य करें। वह बोली, 'हाँ बहिन, मुझे भी बड़ा आनन्द हुआ है।' तब दोनों समधनें नाचने लगीं। समधन ने देखा कि वह बाँह को उठाए बिना ही नृत्य कर रही है। तब उसने कहा, 'आओ बहिन, दोनों हाथ उठाकर हम नाचें, आज बड़े भारी आनन्द का दिन है।' किन्तु एक हाथ से बगल दबाए और एक हाथ उठाकर वह नाचने लगी। तब समधन ने कहा, 'बहिन यह क्या! एक हाथ उठाकर नाचना क्या! आओ दोनों हाथ उठाकर नाचें। यह देख! मैं दोनों हाथ उठाकर नाच रही हूँ।' किन्तु वह बगल दबाए हुए हँसते-हँसते एक हाथ उठाकर नाचती रही और बोली, 'जो जैसे जानता है बहिन!'

''मैं बगल में हाथ देकर दबाता नहीं,— मैंने दोनों हाथ छोड़ दिए हैं। मुझे भय नहीं। तभी तो मैं नित्य और लीला दोनों ही लेता हूँ।''

ठाकुर क्या यह कह रहे हैं कि ज्ञानी की लोकमान्य पाने की कामना, ज्ञानी की मुक्ति की कामना— ये सब रहने के कारण वह दोनों हाथ उठाकर नहीं नाच सकता? नित्य और लीला दोनों नहीं ले सकता? और ज्ञानी को भय रहता है कि कहीं पीछे बद्ध न हो जाऊँ! विज्ञानी को भय नहीं।

श्रीरामकृष्ण— केशवसेन से कहा था, 'मैं' को बिना त्यागे नहीं होगा। वह बोला, वैसा होने पर तो महाशय दल-वल नहीं रहता। तब मैंने कहा, 'कच्चा मैं', 'बज्जात मैं'-त्याग करने को कहता हूँ; किन्तु 'पक्का मैं', 'बालक का 'मैं', 'ईश्वर का दास मैं', 'विद्या का मैं'— इस में दोष नहीं। 'संसारी (गृही) का मैं', 'अविद्या का मैं' एक मोटी लाठी की न्यायीं है। सच्चिदानन्द सागर के जल को वह लाठी जैसे दो भाग करती है। किन्तु 'ईश्वर-दास का मैं', 'बालक का मैं', 'विद्या का मैं' जल के ऊपर रेखावत् है। जल एक, खूब सुन्दर दिखाई देता है— केवल बीच में एक ऐसी रेखा है, जैसे दो भाग जल। वस्तुत: एक जल दिखता है।

''शंकराचार्य ने 'विद्या का मैं' रखा था— लोकशिक्षा के लिए।''

(ब्रह्मज्ञान-लाभ के पश्चात् 'भक्त का मैं'— गोपी-भाव)

''ब्रह्मज्ञान-प्राप्ति के बाद भी वे अनेकों के भीतर 'विद्या का मैं', 'भक्त का मैं' रख देते हैं। हनुमान साकार-निराकार-साक्षात्कार करने के पश्चात् सेव्य-सेवक के भाव में, भक्त के भाव में रहते थे। उन्होंने रामचन्द्र से कहा, 'राम, सोचता हूँ तुम पूर्ण, मैं अंश; कभी सोचता हूँ, तुम सेव्य, मैं सेवक; और राम, जब तत्त्वज्ञान होता है तब देखता हूँ 'तुम ही मैं, मैं ही तुम'!

''यशोदा कृष्ण-विरह में कातर होकर श्रीमती के पास गईं। उनका कष्ट देखकर श्रीमती ने उन्हें स्वरूप में दर्शन दिया, और बोलीं, 'कृष्ण चिदात्मा और मैं चित्शक्ति। माँ, तुम मुझ से वर लो।' यशोदा बोलीं, 'माँ, मुझे ब्रह्मज्ञान नहीं चाहिए। केवल यह वर दो जैसे ध्यान में गोपाल का रूप सर्वदा दर्शन हो, और कृष्णभक्त-संग जैसे सर्वदा हो, और जैसे मैं भक्तों की सेवा कर सकूँ, और उनका नाम-गुणकीर्त्तन जैसे मैं सर्वदा कर सकूँ।'

''गोपियों की इच्छा हुई थी, भगवान के ईश्वरीय रूप-दर्शन करें। कृष्ण ने उन्हें यमुना में डुबकी लगाने के लिए कहा। डुबकी देते ही तुरन्त सब ही बैकुण्ठ में उपस्थित हुईं, भगवान के उसी षडैश्वर्यपूर्ण रूप के दर्शन हुए। किन्तु अच्छा नहीं लगा। तब कृष्ण से उन्होंने कहा, 'हमारे गोपाल के

दर्शन, गोपाल की सेवा ही जैसे रहे और हम कुछ भी नहीं चाहतीं।'

''मथुरा जाने से पहले कृष्ण ने ब्रह्म-ज्ञान देने का प्रयत्न किया था। कहा था, 'मैं सर्वभूत में अन्तर-बाहर हूँ। तुम लोग क्या एक ही रूप देख रही हो?' गोपयिाँ कह उठीं, 'कृष्ण, क्या तुम फिर हमारा त्याग करके जा रहे हो, जभी हमें ब्रह्म-ज्ञान का उपदेश दे रहे हो?'

''गोपियों का भाव क्या है, जानते हो? हम राई (राधा) के, राधा हमारी।''

एक भक्त— क्या यह 'भक्त का मैं' बिल्कुल नहीं जाता?

श्रीरामकृष्ण और वेदान्त
(Sri Ramakrishna and the Vedanta)

श्रीरामकृष्ण— वह 'मैं' कभी-कभी एक बार जाता है। तब ब्रह्मज्ञान होकर समाधिस्थ हो जाता है। मेरा भी जाता है। किन्तु लगातार नहीं। सा रे गा मा पा धा नि— किन्तु 'नि' पर अनेक क्षण नहीं रहा जाता, फिर दोबारा नीचे के स्वरों पर उतरना पड़ता है। मैं कहता हूँ 'माँ मुझे ब्रह्मज्ञान मत देना'। पहले साकारवादी लोग खूब आते-जाते थे। उसके पश्चात् अब ब्रह्मज्ञानियों ने आना आरम्भ किया! तब प्राय: उसी प्रकार बेहोश होकर समाधिस्थ हो जाता था और होश होने पर कहता, 'माँ, मुझे ब्रह्मज्ञान मत देना।'

पण्डित— हमारे कहने से वे सुनेंगे?

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर हैं कल्पतरु। जो जिसे चाहेगा, वही पाएगा। किन्तु कल्पतरु के निकट रहकर माँगना होता है, तभी बात बनती है।

''फिर भी एक विशेष बात है— वे हैं भावग्राही। जो जैसा सोचकर साधना करता है, उसका वैसा ही होता है। जैसा भाव तैसा लाभ। कोई जादूगर राजा के सामने खेल दिखाता है और बीच-बीच में कहता है, 'राजा! रुपया दो, कपड़ा दो'। उसी समय उसकी जीभ तालु की जड़ के पास उलट गई। तुरन्त कुम्भक हो गया। फिर वाणी नहीं, शब्द नहीं, स्पन्दन नहीं! तब

सब ने ईंटों की कब्र तैयार करके उसको उसी भाव में दबा दिया! हजार वर्ष पश्चात् उसी कब्र को किसी ने खोदा। तब लोगों ने देखा कि कोई मानो समाधिस्थ हुआ बैठा है। वे उसको साधु जानकर पूजा करने लगे। उस समय हिलाते-डुलाते हुए जीभ तालु से हट गई। तब उसे होश हुआ और वह चीत्कार करके बोलने लगा— देख जादू मेरा, देख जादू! राजा, रुपया दो, कपड़ा दो।

''मैं रोता और कहता, माँ विचारबुद्धि पर वज्राघात हो जाए!''

पण्डित— तो फिर आप की भी (विचारबुद्धि) थी?

श्रीरामकृष्ण— हाँ, एक बार (कभी) थी।

पण्डित— हाँ, आप बता दें, तो फिर हमारी भी जाएगी। आप की कैसे गई?

श्रीरामकृष्ण— ऐसे ही किसी तरह गई।

चतुर्थ परिच्छेद

ईश्वरदर्शन जीवन का उद्देश्य— उपाय

(ऐश्वर्य और माधुर्य— कोई-कोई ऐश्वर्य-ज्ञान नहीं चाहते)

ठाकुर कुछ देर तक चुप रहे। फिर बातें करने लगे।

श्रीरामकृष्ण— ईश्वर कल्पतरु। उनके पास रहकर माँगना चाहिए। तब जो कुछ माँगता है, वही पाता है।

''ईश्वर ने क्या-क्या, कितना कुछ किया है! उनका अनन्त ब्रह्माण्ड! उनके अनन्त ऐश्वर्य के ज्ञान से मेरा क्या प्रयोजन? फिर यदि जानने की इच्छा हो तो पहले उनको प्राप्त करना चाहिए, तत्पश्चात् वे बता देंगे। यदुमल्लिक के कितने मकान, कितने कम्पनी के कागज हैं— इन सबकी मुझे क्या जरूरत? मुझे तो जरूरत है कि जो कुछ करके हो, बाबू के साथ बातचीत करना! वह नाला लाँघ कर ही (दीवार फाँद कर ही) हो! प्रार्थना करके ही

हो! अथवा दरबान के धक्के खाकर ही हो! बातचीत के बाद कितना कुछ है, एक बार पूछने पर बाबू ही बतला देता है। और फिर बाबू के संग बातचीत हो जाने पर उसके कर्मचारी भी मानते हैं। *(सबका हास्य)*।

''कोई-कोई ऐश्वर्य का ज्ञान नहीं चाहता। कलाल की दुकान पर कितने मन मद (शराब) है, मुझे इसकी क्या जरूरत है! मेरा तो (काम) एक बोतल से ही हो जाता है। ऐश्वर्य-ज्ञान क्या चाहेगा, यदि ज़रा-सी शराब पी ली है, उसी से मतवाला है!''

(ज्ञानयोग बड़ा कठिन है— अवतार आदि नित्यसिद्ध)

''भक्तियोग, ज्ञानयोग— ये सब ही पथ हैं। जिस पथ द्वारा ही जाओ, उनको पा लोगो। भक्ति का पथ है सहज पथ। ज्ञान, विचार का पथ कठिन पथ है।

''कौन-सा पथ अच्छा है— इतना विचार करने का क्या प्रयोजन? विजय के साथ अनेक दिन बातें हुई थीं। विजय से कहा था— एक व्यक्ति प्रार्थना किया करता था, 'हे ईश्वर! तुम क्या हो, कैसे हो— मुझे दिखला दो।'

''ज्ञान, विचार का पथ है कठिन। पार्वती ने गिरिराज को नाना ईश्वरीय रूपों में दर्शन देकर कहा था, 'पिता जी, यदि ब्रह्मज्ञान चाहते हो तो साधु-संग करो।'

''ब्रह्म क्या है— यह मुख से नहीं बोला जाता। राम-गीता में है, केवल तटस्थ लक्षण के द्वारा उनके विषय में बताया जाता है, जैसे गंगा के ऊपर घोष पल्ली है। गंगा के तट के ऊपर है— यह बात कहकर घोष पल्ली को व्यक्त किया जाता है।

''निराकार ब्रह्म का क्यों नहीं साक्षात्कार होगा? किन्तु है बड़ा कठिन। विषयबुद्धि का लेश रहने से नहीं होगा। इन्द्रियों के जितने विषय— रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श— सारे छूट जाने पर, मन का लय हो जाने पर, तब अनुभव में 'बोधे बोध' होता है और अस्तिमात्र जाना जाता है।''

पण्डित—अस्तीत्योपलब्धव्य* इत्यादि।

श्रीरामकृष्ण—उनको पाने के लिए एक भाव का आश्रय करना चाहिए— वीर-भाव, सखी-भाव या दासी-भाव और सन्तान-भाव।

मणिमल्लिक—जभी दृढ़ता होगी।

श्रीरामकृष्ण—मैं सखी-भाव में अनेक दिन था। कहता था, ''मैं आनन्दमयी, ब्रह्ममयी की दासी हूँ। अरी ओ दासियो, मुझे अपनी दासी बना लो। मैं गर्व करता हुआ चला जाऊँगा यह कहते-कहते 'मैं ब्रह्ममयी की दासी'!

''किसी-किसी को साधना बिना किए ही ईश्वर प्राप्त हो जाते हैं। उन्हें नित्यसिद्ध कहते हैं। जिन्होंने जप-तपादि साधना करके ईश्वर-लाभ किया है, उन्हें कहते हैं साधन-सिद्ध। और फिर कोई-कोई कृपा-सिद्ध हैं— जैसे हजार वर्ष का अन्धेरा कमरा, प्रदीप ले जाने पर एक क्षण में रोशन हो जाता है!

''और फिर हैं हठात् सिद्ध— जैसे गरीब का लड़का बड़े मनुष्य की नजर में पड़ गया। बाबू ने उसको बेटी ब्याह दी। उसके संग उसका घर, मकान, गाड़ी, दास-दासी सब हो गया।

''और है स्वप्न-सिद्ध— स्वप्न में दर्शन हुआ।''

सुरेन्द्र *(सहास्य)*— मैं तो अब सोता हूँ। पीछे बाबू बन जाऊँगा।

श्रीरामकृष्ण *(सस्नेह)*— तुम तो बाबू हो ही। 'क' में आकार लगाने पर 'का' होता है, फिर और एक आकार देना वृथा है, देने पर वही 'का' ही होगा! *(सब का हास्य)*।

''नित्यसिद्ध अलग श्रेणी है— जैसे अरणिकाष्ठ, ज़रा-सा घिसने पर ही आग और फिर बिना घिसे भी आग होती है। ज़रा-सी साधना करने पर ही नित्यसिद्ध भगवान को प्राप्त कर लेता है, और साधना बिना किए भी पा लेता है।

''किन्तु नित्यसिद्ध भगवान-लाभ करने के पश्चात् साधना करता है। जैसे घीया-कद्दू के पौधे पर पहले फल होता है, फिर पीछे फूल।''

---

* अस्ति इति उपलब्धव्य— 'वह है' इस भाव की प्राप्ति होती है।

पण्डित 'घीया-कद्दू का फल पहले' सुनकर हँसते हैं।

श्रीरामकृष्ण— और नित्यसिद्ध होमा पक्षी जैसा है। उसकी माँ ऊँचे आकाश पर रहती है। जन्म (प्रसव) के बाद बच्चा धरती की ओर गिरता रहता है। गिरते-गिरते ही पंख निकल आते हैं। आँखें खुल जाती हैं। किन्तु धरती पर चोट लगने से पहले ही माँ की ओर चीत्कार करके दौड़ लगाता है— 'माँ कहाँ, माँ कहाँ!' देखो, 'क' लिखते ही प्रह्लाद की आँखों से प्रेमाश्रु-धारा!

ठाकुर नित्यसिद्ध की बात में, अरणिकाष्ठ और होमा पक्षी के दृष्टान्त द्वारा क्या निजी अवस्था को समझा रहे हैं?

ठाकुर पण्डित का विनीत भाव देखकर सन्तुष्ट हुए। पण्डित के स्वभाव के विषय में भक्तों को बता रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण *(भक्तों के प्रति)*— इनका स्वभाव बहुत ही सुन्दर है। मिट्टी की दीवाल में कील ठोकने में कोई कष्ट नहीं होता। पत्थर में कील की चोंच टूट जाती है किन्तु पत्थर का कुछ नहीं होता। ऐसे लोग हैं कि हजार ईश्वर-कथा सुन लें, किसी प्रकार चैतन्य नहीं होता, जैसे मगरमच्छ— शरीर पर तलवार का वार नहीं लगता!

(पाण्डित्य की अपेक्षा साधना अच्छी— विवेक)

पण्डित— घड़ियाल के पेट में बरछा मारने से होता है। *(सब का हास्य)*।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ढेरों शास्त्र पढ़ने से क्या होगा? फिलॉसफी (philosophy)! *(सबका हास्य)*।

पण्डित *(सहास्य)*— हाँ, फिलॉसफी ही तो!

श्रीरामकृष्ण— लम्बी-लम्बी बातें करने से क्या होगा? बाण-शिक्षा लेने के समय पहले केले के वृक्ष को दागना (निशाना लगाना) होता है, फिर सरकण्डे के वृक्ष को; फिर बत्ती पर, फिर उड़ते पक्षी पर।

"इसलिए पहले साकार पर मन स्थिर करना चाहिए।

"और फिर त्रिगुणातीत भक्त है— नित्यभक्त, जैसे नारद आदि। उस

भक्ति में चिन्मय श्याम, चिन्मय धाम, चिन्मय सेवक— नित्यईश्वर, नित्यभक्त, नित्यधाम।

''जो नेति-नेति ज्ञान-विचार करते हैं, वे अवतार नहीं मानते। हाजरा सुन्दर कहता है— भक्त के लिए ही अवतार है, ज्ञानी के लिए अवतार नहीं। वे तो सोऽहम् बने बैठे हैं।''

ठाकुर और भक्तगण सब ही कुछ काल चुप किए हैं। अब पण्डित बातें करते हैं :

पण्डित— जी, कैसे यह निष्ठुर भाव जाए? हास्य देखने से मांसपेशी (muscles), स्नायु (nerves) में मन चला जाता है। शोक देखकर nervous system स्नायु मण्डल में मन चला जाता है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— तभी तो नाराण शास्त्री कहता था— शास्त्र पढ़ने का दोष है, तर्क, विचार— ये सब आकर गिरा देते हैं।

पण्डित— जी, उपाय क्या कुछ भी नहीं? थोड़ा काँट-छाँट (सफाई) कर दें।

श्रीरामकृष्ण— है, विवेक। एक गाना है :

'विवेक नामे तार बेटा रे तत्वकथा ताय सुधावि।'

[उसका विवेक नाम का बेटा है, तत्त्वकथा उससे पूछना।]

''विवेक, वैराग्य, ईश्वर में अनुराग— यही उपाय है। विवेक बिना हुए बात कभी भी ठीक-ठीक नहीं होती। सामाध्यायी बहुत-सी व्याख्या के बाद बोला, 'ईश्वर नीरस!' किसी ने कहा था, 'आमादेर मामादेर एक गोयाल घोड़ा आछे।' (हमारे मामाओं के यहाँ एक गौशाला भर घोड़े हैं।) गौशाला में क्या घोड़े रहते हैं?

(सहास्य) ''तुम तो छानाबड़ा (पनीर का बड़ा) हो गए हो। अब दो-चार दिन रस में पड़े रहना तुम्हारे लिए भी अच्छा है, औरों के लिए भी अच्छा! दो-चार दिन।''

पण्डित *(ईषत् हँसकर)*— छानाबड़ा जलकर कोयला हो गया है।

श्रीरामकृष्ण *(सहास्य)*— ना, ना; तिलचट्टे (cockroach) का रंग हो गया है।

हाजरा— खूब सुन्दर तला गया है— अब रस पी लेगा बढ़िया।

(पूर्वकथा— तोतापुरी का उपदेश, गीता का अर्थ, व्याकुल हो जाओ)

श्रीरामकृष्ण— क्या जानते हो— शास्त्र अधिक पढ़ने की जरूरत नहीं। अधिक पढ़ने से तर्क, विचार आ जाता है। न्यांगटा (तोतापुरी) मुझे सिखाता था, उपदेश देता था— गीता दस बार कहने से जो बनता है गीता का सार वही है! अर्थात् 'गीता-गीता' दस बार बोलते-बोलते 'त्यागी-त्यागी' हो जाता है।

''उपाय—विवेक-वैराग्य और ईश्वर में अनुराग। कैसा अनुराग? ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल। जैसे व्याकुल होकर वत्स के पीछे गाय भागती है।''

पण्डित— वेद में ठीक ऐसे ही है, गाय जैसे वत्स के लिए डकारती है, तुम्हें हम वैसे ही पुकारते हैं।

श्रीरामकृष्ण— व्याकुलता के साथ रोना। और विवेक-वैराग्य लाकर यदि कोई सर्वत्याग कर सके, तब तो फिर साक्षात्कार हो जाएगा।

''वैसी व्याकुलता आने पर उन्माद की अवस्था हो जाती है। तब ज्ञानपथ में ही रहो, या भक्तिपथ में ही रहो। दुर्वासा को ज्ञान-उन्माद हुआ था।

''संसारी के ज्ञान में और सर्वत्यागी के ज्ञान में बड़ा अन्तर है। संसारी (गृही) का ज्ञान— दीप के प्रकाशवत्, घर के भीतर ही प्रकाश होता है। अपनी देह, घर-गृहस्थी के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझ सकता। सर्वत्यागी का ज्ञान है सूर्य के आलोकवत्! उस प्रकाश से घर के भीतर-बाहर सब दिखाई देता है। चैतन्यदेव का ज्ञान है सौरज्ञान— ज्ञानसूर्य का आलोक! और फिर उनके भीतर भक्तिचन्द्र का शीतल आलोक भी था। ब्रह्मज्ञान, भक्तिप्रेम— दोनों ही थे।''

ठाकुर क्या चैतन्यदेव की अवस्था-वर्णन करके अपनी निजी अवस्था बतला रहे हैं?

(ज्ञानयोग-भक्तियोग— कलि में नारदीय भक्ति)

''अभावमुख चैतन्य और भावमुख चैतन्य। भाव-भक्ति एक विशेष पथ है, और अभाव (नेति-नेति ज्ञान-विचार) का एक और है। तुम अभाव की बात कर रहे हो। किन्तु 'वह बड़ा कठिन ठाँव! गुरु-शिष्य देखा नहीं!' (से बड़ो कठिन ठांई गुरु-शिष्य देखा नाहिं!) जनक के पास शुकदेव ब्रह्मज्ञान-उपदेश के लिए गए। जनक बोले, 'पहले दक्षिणा देनी होगी, तुम्हारा ब्रह्मज्ञान हो जाने पर फिर दक्षिणा नहीं दोगे क्योंकि तब गुरु-शिष्य में भेद नहीं रहता।'

''भाव, अभाव सब ही हैं पथ। अनन्त मत, अनन्त पथ। किन्तु एक विशेष बात है। कलि में नारदीय भक्ति— यह विधान है। इस पथ में पहले होती है भक्ति, भक्ति पकने पर भाव, भाव की अपेक्षा उच्च है महाभाव और प्रेम। महाभाव और प्रेम जीव का नहीं होता। जिसका हो गया है, उसे वस्तु-लाभ अर्थात् ईश्वर-लाभ हो गया है।''

पण्डित— जी, बताने लगो तो बहुत बातों द्वारा समझाना पड़ता है।

श्रीरामकृष्ण— तुमि नेजा मुड़ो बाद दिये बोलबे हे। (तुम आदि, अन्त सब छोड़कर कहोगे।)

पञ्चम परिच्छेद

(कालीब्रह्म, ब्रह्म-शक्ति अभेद— सर्वधर्म-समन्वय)

श्रीयुक्त मणिमल्लिक के संग पण्डित बातें करते हैं। मणिमल्लिक ब्राह्मसमाज के जन हैं। पण्डित ब्राह्मसमाज के दोष-गुण लेकर घोर तर्क करते हैं। ठाकुर छोटी खाट पर बैठे देख रहे हैं और हँस रहे हैं। बीच-बीच में कह रहे हैं,

''यही है सत्व का तम— वीर का भाव। ऐसा चाहिए ही। अन्याय, असत्य देख लेने पर चुप करके नहीं रहना चाहिए। कल्पना करो, बुरी स्त्री परमार्थ की हानि करने आती है, तब ऐसा वीर का भाव धारण करना चाहिए। तब

कहोगे, क्यों साली! मेरी परमार्थ-हानि करेगी? अभी तेरा शरीर चीर दूँगा।''

और फिर हँस कर कह रहे हैं,

''मणिमल्लिक का ब्राह्मसमाज का मत काफी पुराना है— उसके भीतर तुम अपना मत नहीं घुसा सकोगे। पुराना संस्कार क्या झट जाता है? कोई हिन्दु बड़ा भक्त था— सर्वदा जगदम्बा की पूजा और नाम किया करता। मुसलमानों का जब राज हुआ तब भक्त को पकड़ कर मुसलमान बना दिया, और कहा, तू अब मुसलमान हो गया है। कहो अल्लाह! केवल अल्लाह नाम का जप करो। वह काफी कष्ट से 'अल्लाह-अल्लाह' कहने लगा। किन्तु कभी-कभी मुँह से निकल जाता 'जगदम्बा'! तब मुसलमान उसे मारने गए। वह बोला, 'दुहाई, शेख जी! मुझे मारें मत, मैं तुम्हारे अल्लाह का नाम लेने की खूब चेष्टा करता हूँ, किन्तु हमारी जगदम्बा मेरे कण्ठ तक रह रही हैं, तुम्हारे अल्लाह को धक्का देती रहती हैं। *(सबका हास्य)*।

(पण्डित के प्रति, सहास्य)

''मणिमल्लिक को कुछ ना कहो!

''क्या है, जानते हो! रुचि-भेद और जिसके पेट को जो सहन हो। उन्होंने नाना धर्म, नाना मत किए हैं— अधिकारी विशेषों के लिए। सब ब्रह्मज्ञान के अधिकारी नहीं हैं, इसीलिए। और फिर, उन्होंने साकार-पूजा की व्यवस्था की है। माँ ने लड़कों के लिए घर में मछली मँगवाई। उसी मछली से झोल[1], अम्बल[2], भाजा[3] और पुलाव बना लिया। सब के पेटों को पुलाव भी सहन नहीं होता, जभी किसी-किसी के लिए मछली का झोल (रसेदार तरकारी) बना दिया है— वे पेट के रोगी हैं। और किसी की पसन्द है अम्बल (खट्टा) खाना अथवा तली मछली खाना। प्रकृति अलग-अलग है— और फिर अधिकारी-भेद है।''

सब चुप हैं। ठाकुर पण्डित से कहते हैं, ''जाओ, एक बार देव-दर्शन कर आओ, और फिर बाग में टहलो।''

---

1 झोल=तरकारी आदि का रसा। 2 अम्बल=खटाई। 3 भाजा=भुनी हुई (तली हुई)।

साढ़े पाँच बज गए हैं। पण्डित और उनके बन्धु उठे, मन्दिर देखेंगे। भक्तों में से भी कोई-कोई उनके संग गए।

कुछ क्षण पश्चात् ठाकुर और मास्टर साथ-साथ टहलते-टहलते गंगातीर के पक्के घाट की ओर जा रहे हैं। ठाकुर मास्टर से कह रहे हैं, ''बाबूराम अब कहता है, पढ़-लिख कर क्या होगा?''

गंगातीर पर पण्डित के साथ ठाकुर फिर दोबारा मिले। ठाकुर कहते हैं, ''काली-मन्दिर में तुम जाआगे नहीं?— जभी आ गया।'' पण्डित थोड़ा घबरा कर बोले, ''जी, चलें, जाकर दर्शन कर लें।''

ठाकुर सहास्यवदन। चान्दनी के अन्दर से काली-मन्दिर की ओर जाते-जाते कह रहे हैं, ''एक गाने में है।'' यह कहकर मधुर सुर से गाते हैं—

''मा कि आमार कालो रे!
कालरूपे दिगम्बरी हृदिपद्म करे आलो रे!''

[मेरी माँ क्या काली है रे! कालरूप में यह दिगम्बरी हृदयपद्म को रोशन करती है जी!]

चान्दनी से प्रांगण में आकर फिर कहते हैं, एक गाने में है—

ज्ञानाग्नि ज्वेले घरे, ब्रह्ममयी रूप देखो ना!

[घर में ज्ञानाग्नि जल रही है, ब्रह्ममयी का रूप देखो ना!]

मन्दिर में आकर ठाकुर ने भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। माँ के श्री पादपद्मों में जवा-बिल्व हैं। वे त्रिनयनी भक्तों को कितने स्नेह के नेत्रों से देख रही हैं! हाथ में वराभय। माँ बनारसी साड़ी और विविध अलंकार पहने हुए हैं।

श्रीमूर्ति-दर्शन करके भूधर के दादा कहते हैं— ''सुना है, यह नवीन भास्कर का निर्माण है।''

ठाकुर कहते हैं— ''यह तो नहीं जानता। जानता हूँ, ये हैं चिन्मयी!''

भक्तों के संग ठाकुर नाट-मन्दिर में टहलते-टहलते दक्षिणास्य होकर आ रहे हैं। बलिदान का स्थान देखकर पण्डित कहते हैं— ''माँ बकरा कटते देख नहीं पातीं।'' *(सबका हास्य)*।

षष्ठ परिच्छेद

ठाकुर अब लौट रहे हैं। बाबूराम से बोले, अरे आओ! मास्टर भी संग आ गए।

सन्ध्या हो गई। कमरे के पश्चिम वाले गोल बरामदे में आकर ठाकुर बैठ गए। भावस्थ— अर्धबाह्य! निकट बाबूराम और मास्टर हैं।

आजकल ठाकुर को सेवा का कष्ट हो रहा है। राखाल आजकल नहीं रहते। कोई-कोई हैं। किन्तु वे लोग ठाकुर की सब अवस्थाओं में उन्हें छू नहीं सकते। ठाकुर संकेत करके बाबूराम से कहते हैं— ''छूना-ना-रा-छू। इस अवस्था में और किसी को छूने नहीं दे सकता। तू रह, तो फिर अच्छा है।''

(ईश्वर-लाभ और कर्मत्याग— नूतन हण्डी— गृही भक्त और नष्टा स्त्री)

पण्डित मन्दिर-दर्शन करके ठाकुर के कमरे में लौट आए हैं। ठाकुर पश्चिम के गोल बरामदे में से कहते हैं, तुम थोड़ा जल पी लो। पण्डित बोले, मैंने सन्ध्या नहीं की। तुरन्त ठाकुर भाव में मतवाले होकर गाना गा रहे हैं, और खड़े हो गए—

गया गंगा प्रभासादि, काशी काञ्ची केबा चाय।
काली काली बोले आमार अजपा यदि फुराय॥

त्रिसन्ध्या जे बोले काली, पूजा सन्ध्या से कि चाय।
सन्ध्या तार सन्धाने फेरे कभु सन्धि नाहि पाय॥

पूजा होम जप यज्ञ आर किछु ना मने लय।
मदनेरइ यागयज्ञ ब्रह्ममयीर रांगा पाय॥

[भावार्थ—मेरा श्वास यदि काली-काली कहते हुए समाप्त हो जाता है तो फिर गया, गंगा, प्रभास आदि कौन माँगता है? जो तीन सन्ध्याओं के समय 'काली' कहता है, वह फिर सन्ध्या-पूजा नहीं चाहता। सन्ध्या भी उसकी खोज में मारी-मारी फिरती रहती है किन्तु कभी भी सन्धि (मेल) नहीं पाती। तब वह मनुष्य पूजा, हवन, जप, यज्ञ किसी की भी मन में इच्छा नहीं करता। मदन (कवि) का याग-यज्ञ तो ये ब्रह्ममयी के लाल (आनन्दमय) चरण हैं।]

ठाकुर प्रेमोन्मत्त होकर फिर और कह रहे हैं—

''सन्ध्या कब तक?— जब तक ॐ कहते हुए मन लीन नहीं होता।''

पण्डित— तो फिर जल पी लेता हूँ, तब फिर सन्ध्या करूँगा।

श्रीरामकृष्ण— मैं तुम्हारे स्रोत में बाधा नहीं दूँगा। समय बिना हुए त्याग ठीक नहीं। फल पक जाने पर फूल अपने-आप ही झड़ जाता है। कच्ची अवस्था में नारियल के पत्ते के साथ खेंचातानी नहीं करते, इस तरह करने पर वृक्ष खराब हो जाता है।

सुरेन्द्र घर जाने की तैयारी कर रहे हैं। मित्रों को बुला रहे हैं। उन्हें गाड़ी पर ले जाएँगे।

सुरेन्द्र— महेन्द्रबाबू, चलोगे?

ठाकुर अभी भी भावस्थ हैं, सम्पूर्ण प्रकृतिस्थ नहीं हुए। वे उसी अवस्था में ही सुरेन्द्र से कहते हैं—

''तुम्हारा घोड़ा जितना वहन कर सकता है, उससे अधिक मत लेना।''

सुरेन्द्र प्रणाम करके चले गए।

पण्डित सन्ध्या करने के लिए गए। मास्टर और बाबूराम कलकत्ता जाएँगे, ठाकुर को प्रणाम कर रहे हैं। ठाकुर अभी भी भावस्थ हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर के प्रति)*— बात समझ गए ना? ज़रा थोड़ा ठहरो।''

मास्टर बैठ गए। ठाकुर क्या आज्ञा करेंगे— इन्तजार कर रहे हैं। ठाकुर ने संकेत से बाबूराम को बैठने के लिए कहा। बाबूराम मास्टर से बोले, और थोड़ा-सा बैठो। ठाकुर बोले, ज़रा हवा करो। बाबू हवा करते हैं, मास्टर भी करते हैं।

श्रीरामकृष्ण *(मास्टर से, सस्नेह)*— अब क्यों फिर तुम उतना नहीं आते?

मास्टर— जी, विशेष कुछ कारण नहीं है। घर में काम था।

श्रीरामकृष्ण— बाबूराम का घर कौन-सा है, कल टेर (खबर) मिली। तभी तो अब भी उसको रखने के लिए इतना कह रहा हूँ। पक्षी समय जानकर अण्डा फोड़ता है। क्या है, जानते हो? ये शुद्ध आत्मा हैं। अभी तक कामिनी-काञ्चन के भीतर पड़े नहीं। क्या कहते हो?

मास्टर— जी हाँ। अभी तक कोई दाग नहीं लगा।

श्रीरामकृष्ण— नूतन हण्डी। दूध रखने से खराब नहीं होगा।

मास्टर— जी हाँ।

श्रीरामकृष्ण— बाबूराम को यहाँ पर रखने की आवश्यकता पड़ी है। अवस्था होती है कि ना! जभी ऐसे व्यक्ति के रहने का प्रयोजन है। वह कहता है, धीरे-धीरे रहूँगा, नहीं तो घर में हंगामा होगा— घर में गड़बड़ करेंगे। मैं कहता हूँ, शनिवार-रविवार आओगे।

इधर पण्डित सन्ध्या करके आ गए हैं। उनके संग में भूधर और उन के ज्येष्ठ भाई* हैं। पण्डित अब जलपान करेंगे।

भूधर के बड़े भाई कहते हैं,

''हमारा क्या होगा; कुछ बता दें। हमारे लिए उपाय क्या है?''

श्रीरामकृष्ण— तुम तो मुमुक्षु हो। व्याकुलता होने से ही ईश्वर मिलते हैं। श्राद्ध का अन्न न खाना। गृहस्थ में नष्टा स्त्री की भाँति रहोगे। नष्टा स्त्री घर का सब काम जैसे खूब मन से करती है, किन्तु उसका मन उपपति के ऊपर रात-दिन पड़ा रहता है। संसार में काम करो, किन्तु मन सर्वदा ईश्वर के ऊपर रखो।

पण्डित जलपान कर रहे हैं। ठाकुर कहते हैं, आसन पर बैठकर खाओ।

खाने के पश्चात् पण्डित से कहते हैं —

''तुमने तो गीता पढ़ी हुई है,— जिसको सब आदर-मान देते हैं, उसमें ईश्वर की विशेष शक्ति होती है।''

पण्डित— यत् यत् विभूतिमत् सत्त्वम् श्रीमदूर्ज्जितमेव वा।

---

* भूधर के बड़े दादा ने शेष जीवन एकाकी अति पवित्र भाव में काशीधाम में काटा था। ठाकुर का सर्वदा चिन्तन करते थे।

श्रीरामकृष्ण— तुम्हारे भीतर अवश्य उनकी शक्ति है।
पण्डित— जी, जो व्रत लिया है, उसे अध्यवसाय के सहित करूँ क्या?

ठाकुर जैसे अनुरोध से कहते हैं, ''हाँ, होगा।'' तत्पश्चात् ही और बातों द्वारा उस बात को जैसे दबा दिया।

श्रीरामकृष्ण— शक्ति को मानना चाहिए। विद्यासागर ने कहा— ''उन्होंने क्या किसी को अधिक शक्ति दी है?''
मैंने कहा— ''तो फिर एक व्यक्ति एक सौ लोगों को कैसे मार सकता है, कुइन (क्वीन) विक्टोरिया का इतना मान-नाम क्यों है, यदि शक्ति न हो तो? मैंने कहा, तुम मानते हो कि नहीं? तब बोला, हाँ, मानता हूँ।''

पण्डित विदाई लेकर उठे और ठाकुर को भूमिष्ठ होकर प्रणाम किया। संगी मित्रों ने भी प्रणाम किया।

ठाकुर कह रहे हैं, ''फिर और आना, गांजाखोर गांजाखोर को देखकर आह्लाद (हर्ष) करता है— शायद उसके साथ आलिंगन करे। दूसरा व्यक्ति देख कर मुँह छिपा लेता है। गाय अपने जन को देखकर शरीर चाटती है, अन्य को सींग से धक्का दे देती है।'' *(सब का हास्य)*।

पण्डित के चले जाने पर ठाकुर हँस कर कहते हैं— डाइल्यूटट हो गया है एक दिन में ही! देखा कैसा विनयी! और सारी बातें (मान) लेता है।

आषाढ़ शुक्ला सप्तमी तिथि। पश्चिम के बरामदे में चाँद का प्रकाश पड़ रहा है। ठाकुर वहाँ पर अभी तक बैठे हुए हैं। मास्टर प्रणाम करते हैं। ठाकुर सस्नेह कह रहे हैं, ''जाएगा?''

मास्टर— जी हाँ, तो फिर चलता हूँ।

श्रीरामकृष्ण— एक दिन मन में सोचा था, सभी के घर में एक-एक बार करके जाऊँगा। तुम्हारे वहाँ पर एक बार जाऊँगा। कैसे?

मास्टर— जी, बड़ा अच्छा है।

पण्डित